ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 762-765
www.allresearchjournal.com
Received: 28-05-2017
Accepted: 30-06-2017

डॉ० सुभद्रा साहा
व्याख्याता (शिक्षिका), +2
रामशृंगारी कन्या उच्च विद्यालय
कमतौल, दरभंगा, बिहार, भारत

Correspondence
डॉ० सुभद्रा साहा
व्याख्याता (शिक्षिका), +2
रामशृंगारी कन्या उच्च विद्यालय
कमतौल, दरभंगा, बिहार, भारत

पर्यावरण संरक्षण में वृक्षों की भूमिका

डॉ० सुभद्रा साहा

सारांश
आज पर्यावरण प्रदूषण एक अन्तरराष्ट्रीय समस्या का रूप ले चुका है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को लेकर मनुष्य के बढ़ते लालच का परिणाम संपूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए विनाषकारी सिद्ध हुआ है। यह बात समूचे विश्व को स्वीकार करनी होगी कि प्रगति एवं प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं न कि प्रतिद्वन्दी। पर्यावरण संरक्षण का अर्थ विकास ही समझना चाहिए। यदि प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़–छाड़ बंद नहीं हुई तो पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। अतः पर्यावरण संरक्षण हेतु वृक्षों की उपादेयता अपरिहार्य है।

मुख्य–शब्दः पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों

प्रस्तावना
भारत सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक लोकाचार की समृद्ध परंपरा से संपन्न राष्ट्र रहा है। वेदों व प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पृथ्वी को माता का दर्जा दिया गया है। अथर्ववेद में 'माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः'[1] कहकर इसी पर बल दिया गया है, लेकिन यही माता कही जानेवाली पृथ्वी और समग्रतः कहा जाय तो हमारे पर्यावरण का दोहन और प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ विगत 50 वर्षों में इस कदर बढ़ता गया है कि मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों को जंगलों के विनष्ट होने से, प्रदूषण से, पानी की कमी से एवं प्राकृतिक आपदा जैसी बढ़ती समस्याओं से गंभीर रूप से जूझना पड़ रहा है। 21 वीं सदी के इस दशक में ''लोक प्रयासों, लोक परंपराओं पर विश्वास की कमी आई है। इस सदी में बहुत से नदी–नाले सुख गए, बहुत–सी झीलें नष्ट हो गयीं, पहाड़ नंगे हो गए, भू–कटाव बढ़ा, परम्परागत जल–स्रोत सूख गए। बहुत से गाँव, कस्बे, खेत, जंगल आदि बांधों की गोद में समा गए, परंपरागत रोजगार नष्ट हो गए तथा अनेक वन्य जातियाँ विलुप्त हो गयीं।''[2] वर्ष 2020 को 'जैव विविधता' वर्ष घोषित किया गया है और यह वर्ष तो ऐतिहासिक ही हो गया कारण नोबुल कोरोना इसी वर्ष संपूर्ण विश्व में अपने संक्रमण का ऐसा भयानक पंजा फैलाया कि संपूर्ण विश्व त्राहि–त्राहि कर उठा।
सामान्य अर्थ में पर्यावरण का मतलब है प्राकृतिक वातावरण–भूमि, हवा और पानी। पर्यावरण सुरक्षा आज पृथ्वी के वजूद का प्रश्न बन चुका है, यह अन्तःसंबंधित संकट का विज्ञान है। पर्यावरण के संकट के साथ–साथ इस पृथ्वी पर हमारे जीवनोपयोगी कार्यकलाप का भविष्य संकट में पड़ गया है, अत्यधिक दुःख की बात यह है कि विकास की अंधाधुंध होड़ में पर्यावरण सुरक्षा मात्र एक नारा बनकर रह गयी है। हम इस मोर्चे पर बुरी तरह पिछड़ गए हैं। कारखानों की चिमनियों से उठता धुंआ, रासायनिक दूषित जल का नदियों में बहाव विभिन्न बीमारियों का वाहक है और पेयजल संकट का भी कारण है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, सिमटते जंगलों की वजह से बाँझ होती भूमि और रेगिस्तान का बढ़ता प्रसार एक दूसरे पर आधारित है। भूमि कटाव से बाढ़ का खतरा बढ़ रहा है। प्रतिवर्ष अनियमित वर्षा से सूखे का खतरा पैर पसार रहा है एवं भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट होती जा रही है।
50 टन वजन का एक औसत पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवनकाल में ऑक्सीजन देकर, प्रोटीन उत्पादित कर, नमी बढ़ाकर तथा प्रदूषण घटाकर लगभग 17.5 लाख रुपये के बराबर मानव मात्र की सेवा करता है जबकि उसके काटने पर मात्र 3.3 प्रतिशत भाग मिलता है, शेष 97.7 प्रतिशत हानि उठानी पड़ती है जिसका सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरण संतुलन के प्राकृतिक चक्र पर पड़ता है। इस प्रकार वनों से मनुष्य का गहरा सम्बंध है। आज पर्यावरण विश्व में सर्वाधिक चर्चा का विषय बन गया है। यह पर्यावरण न सिर्फ मनुष्यों के लिए अपितु पृथ्वी के समस्त जीवधारियों के अस्तित्व के लिए एक अपरिहार्य आधार स्तंभ है। पृथ्वी पर बिना पर्यावरण के जीवन की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती। वस्तुतः हमारे चारों ओर व्याप्त परिवेश ही पर्यावरण है। इस परिवेश में जल–स्रोत, तालाब, नदी–नाले, कंदरा, पर्वत, पशु–पक्षी, धरती, वायु, वृक्ष एवं लताएँ आदि हैं। गोस्वामी तुलसीदास

जी ने पर्यावरण का जो स्पष्ट रुप हमारे समक्ष रखा, वह है–

''बापीं तड़ाग अनूप कूप, मनोहरायत सोहहीं,
सोपान सुंदर नीर निर्मल, देखि सुर मुनि मोहहीं।
बहुरंग कंज अनेक खग, कूजहिं मधुप गुंजारहीं,
आराम रम्य पिकादि खग, रव जनु पथिक हंकारहीं।।''[3]

प्रकृति की वानस्पतिक संपदा, यानी वनों के साथ पर्यावरण का बड़ा ही घनिष्ठ संबंध रहा है। अनादि काल से ही प्राणी प्रकृति की गोद में जन्मा, पोषित और विकसित होता रहा है। पर्यावरण और वन इस प्रकृति में एक–दूसरे के अस्तित्व के पूरक हैं। वनों के स्वस्थ संवर्द्धन एवं संरक्षण के लिए पर्यावरण के समस्त घटकों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखना प्राथमिक शर्त है और यह तभी संभव है जबकि पृथ्वी पर चारों तरफ वनों का प्रचुर विस्तार हो। हालाँकि इस विज्ञान युग में, विकासशील समाज में सुरसा–मुख के समान बढ़ती जनसंख्या में औद्योगीकरण को कम करना तो संभव नहीं है, परंतु इसका विकल्प वृक्षारोपण अवश्य है।

प्राचीन काल से ही भारत में वृक्षों की अत्यधिक उपयोगिता को स्वीकार किया गया और मानव भावनाओं के वशीभूत होकर उन्हें ईश्वर का अवतार माना गया। वृक्षों की पूजा हमें उत्तराधिकार में मिली है। वनों की महत्ता को स्वीकारते हुए प्राचीन भारत में अरण्य संस्कृति को पोषण मिला। जहाँ अग्निपुराण में एक वृक्ष दस पुत्रों के समान बताया गया है वहीं मत्स्य पुराण में एक पुत्र दस तालाबों के बराबर और एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर माना गया है। तभी तो महाभारत के अनुशासन पर्व में उल्लेख है कि जो वृक्ष लगाता है उसके लिए ये वृक्ष पुत्र के समान होते हैं। मनुष्य आदिकाल से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में वन पर आश्रित रहा ही है। आदि मानव वनों से ही कंद–मूल, फल–फूल इकट्ठा करके अथवा अन्य पशुओं का आखेट करके आहार जुटाता था। वृक्षों की छालों, पत्तों और पशुओं की खालों से अपना तन ढ़कता था। वृक्षों से प्राप्त लकड़ी और पत्तों से आवास बनाकर रहता था। ''हिन्दू धर्मावलम्बियों का तो अंतिम संस्कार भी वृक्षों से प्राप्त काष्ठ से ही होता है। न जाने कितने उद्योग धंधे वृक्षों के उत्पाद पर ही आधारित हैं और हम नादान इंसान अपने हितैषी उन्हीं वृक्षों को ही जड़ से मिटाने पर तुल गए हैं। हम यह कुल्हाड़ी वृक्षों पर नहीं चला रहे हैं बल्कि अपने पैरों पर मार रहे हैं।''[4]

वर्त्तमान समय में तो वनों का महत्व और भी बढ़ गया है। भवन निर्माण सामग्री के रूप में वनों का लगभग 33 प्रतिशत क्षेत्र प्रयुक्त होता है तथा 50 प्रतिशत का उपयोग ईंधन के रूप में हो जाता है इसके अलावा अनेक उद्योग धंधे यथा कागज उद्योग, रबड़ उद्योग, रेयान उद्योग, लाख उद्योग, विभिन्न प्रकार की औषधियाँ व खेल के सामान इत्यादि भी वनों पर ही आश्रित हैं। इस प्रकर किसी भी देश के आर्थिक विकास में वनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन प्रत्यक्ष आर्थिक लाभों के अतिरिक्त वनों से अनेक अप्रत्यक्ष लाभ भी प्राप्त होते हैं जैसे वन भूमि के कटाव को रोकने, मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि करने, बाढ़–नियंत्रण तथा भूमिगत जल स्तर को ऊँचा करने में सहायक होते हैं। वन जलवायु के नियंत्रक होते हैं तथा मरुस्थलों के प्रसार को रोकने में सहायक होते हैं। जीवित रहने के लिए वृक्ष मानव को प्राणवायु के रुप में ऑक्सीजन प्रदान करते हैं तथा कार्बन–डाई–ऑक्सासइड एवं अन्य विषैली गैसों को पीकर पर्यावरण को प्रदूषण से बचाते हैं। डॉ. टी. एम. मुंशी के अनुसार– 50 टन वजन का एक औसत पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवनकाल में ऑक्सीजन देकर प्रोटीन उत्पादित कर, नमी बढ़ाकर तथा प्रदूषण घटाकर लगभग 17.5 लाख रुपये के बराबर मानव मात्र की सेवा करता है जबकि उसके काटने पर मात्र 3.3 प्रतिशत भाग मिलता है शेष 97.7 प्रतिशत हानि उठानी पड़ती है जिसका सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव पर्यावरण संतुलन के प्राकृतिक चक्र पर पड़ता है। इस प्रकार वनों से मनुष्य का गहरा संबंध है। वन प्रकृति की बहुमूल्य देन है। यह एक अमूल्य संसाधन नहीं, बल्कि वातावरण का प्रत्यक्ष सूचक भी है, यह मानव के लिए प्रकृति का अनुपम उपहार है। इसकी महत्ता को देखते हुए कुछ विद्वान् इसे हरा सोना तो कुछ हरा फेफड़ा पुकारते हैं। परन्तु भौतिक संस्कृति का सबसे बड़ा कहर वनों पर ही बरपा है। पिछली तीन शताब्दियों से मानव ने वनों का ऐसा विनाश किया है कि उसकी पूर्ति संभव नहीं है। 1958 की वन–नीति के आधार पर देश के 33 प्रतिशत भू–भाग पर वन होने चाहिए, परंतु आज के वन–महोत्सव या वृक्षारोपण कार्यक्रमों या सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के बार–बार आयोजन के बाद भी वातावरण नियोजन की राष्ट्रीय समिति के अनुसार देश के कुल भौतिक क्षेत्रफल के मात्र 12 प्रतिशत भाग पर ही वन रह गए हैं और आज भी इस संसाधन का तेजी से उपयोग किया जा रहा है। सबसे विकट स्थिति देश के अन्तर्गत मैदानी भागों का है जहाँ वनों के अन्तर्गत केवल 5 प्रतिशत भूमि रह गई है। इस वन विनाश ने भारत को ऐसे कटघरे में खड़ा कर दिया है कि लगता है कि वृक्ष देवता का प्रकोप हमारी प्रकृति का मार्ग ही अवरूद्ध कर देगा। ऊर्जा प्राप्ति, बांध परियोजनाओं के निर्माण, कृषि भूमि के विस्तार, औद्योगिक कच्चे माल की आपूर्ति, सड़कों व रेल मार्गों के निर्माण तथा झूमिंग कृषि के लिए वनों की अविवेकपूर्ण कटाई, वनों में आग लगने, वृक्षों में बीमारियों के प्रकोप, अव्यवस्थित पशुचारण तथा नए वृक्ष कटाई के अनुपात में कम वृक्ष लगाये जाने आदि के कारणों से पर्यावरण असंतुलन की समस्या उत्पन्न हुई है। एक सर्वेक्षण के अनुसार जंगलों की लगातार कटाई से प्रतिवर्ष भूमि की ऊपरी सतह का करीब 600 करोड़ टन बहुमूल्य मिट्टी नष्ट होती जा रही है। कर्नाटक के उत्तरी कनारा जिले में एक लाख एकड़ जंगल बर्बाद हो जाने के कारण वहाँ की औसत वार्षिक वर्षा में करीब 20 प्रतिशत की कमी हुई है। इसी तरह छोटा नागपुर में, जो अपने अच्छे मौसम और वर्षा के लिए मशहूर रहा है, जंगल की कटाई होते रहने से वहाँ का मौसम बिल्कुल बिगड़ गया है एवं वहाँ प्रायः सूखा और अकाल पड़ता रहता है। बंगलौर, पूना और देहरादून जो अपने प्राकृतिक सौंदर्य, हरियाली और ठंडे शांत वातावरण के लिए प्रसिद्ध थे, आज धूल–धक्कड़, शोर–षराबे से भयंकर गर्म होने लगे हैं। हिल स्टेशन मृत्यु की ओर अग्रसर है। इनमें दक्षिण भारत में ऊटी, पश्चिम में महाबलेश्वर–पंचगनी, उत्तर भारत में दार्जिलिंग, गंगटोक, शिलांग, मसूरी और शिमला प्रमुख है। पर्यटन से इन नैसर्गिक सौन्दर्य वाले स्थलों को बहुत क्षति हुई है। पर्यटकों की संख्या में लगातार वृद्धि होने से वन काटे गए हैं। पेयजल की समस्या ने भयानक रुप धारण कर लिया है। अरुणाचल प्रदेश के उत्तर पूर्वी पहाड़ियों के जंगल कट जाने के कारण ब्रह्मपुत्र नदी में इतनी मिट्टी जम गई है कि उसका तल 14 फिट ऊंचा हो गया है और इस वजह से असम में हर साल बाढ़ आती है। जंगल की कटाई से भू–स्खलन भी होता है जो हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में हो रहा है और उसका कुप्रभाव पिछले कई वर्षों से देखने को मिला है, जब कुल्लू मनाली एवं वहाँ के अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल बाढ़ की विभीषिका झेलने को मजबूर हुए। जंगल काटकर सरकार ने सिंचाई और पनबिजली के लिए जो नहरें और जलाशय बनायी हैं वे भी बहकर आ रही मिट्टी से भरे हैं। इस कारण देश की 39 ऐसी मुख्य परियोजनाओं को खतरा पैदा हो गया है, इतना ही नहीं इस असंतुलन के कारण भूमिगत जल स्तर में निरन्तर कमी आती जा रही है, जिससे पेयजल एवं सिंचाई संकट बढ़ रहा है। जलवायु में भारी मौसमी परिवर्त्तन हो रहा है और दुष्प्रभाव समक्ष है– 26 दिसंबर 2004 को सुनामी लहरें जिसमें 11 देशों के 2 लाख से अधिक लोग काल–कवलित हो गए। अपने अच्छे मौसम के लिए सुख्यात महाराष्ट्र की मुबंई महानगरी जो पिछले कई वर्षों से बाढ़ के कहर से त्राहि–त्राहि कर उठता है वहीं बाढ़ के लिए कुख्यात प्रांत बिहार पानी के

लिए 2019 में तरस गया। वहीं 2020 में बाढ़ के पिछले सभी रिकार्ड यहाँ ध्वस्त हो गये। यू.एन. ओ. के पर्यावरण संरक्षण संस्थान यूनेक के अनुसार पृथ्वी की कुल पैदा होने वाली कार्बन–डाई–ऑक्साइड को कार्बन चक्र में लाने की क्षमता कम पड़ती जा रही है इस प्रकार वनों का अनवरत ह्रास हमारे पर्यावरण के लिए गंभीर चुनौती बन गया है, अगर यही स्थिति रही तो देश की प्राकृतिक एवं सामाजिक विविधता तथा जीवतंता नष्ट हो जायेगी। इस संकट का अनुमान केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि लगभग सौ वर्ष पहले तक भारत में धान की लगभग तीन हजार किस्में पैदा होती थीं, जबकि आज इसकी संख्या 50 से भी कम हो गई है। पक्षी की सैकड़ों प्रजातियाँ लुप्त हो गयी हैं और यह ठीक भी है क्योंकि 'तरु देवो भवः' की अवधारणा से हम मुकर गए हैं। हमारा दृष्टिकोण भौतिकता के प्रभाव में बदल गया है वनों की अंधाधुंध कटाई पर पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों और समाजसेवियों ने चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि इसका पर्यावरण संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इधर कोरोना के कारण हुए लौकडाउन में एक बहुत बड़ी चीज देखने को मिली कि इस अवधि में पर्यावरण बहुत हद तक शुद्ध हो गया। 'नमामि गंगे योजना' एवं अन्य योजनाओं द्वारा गंगा, यमुना इत्यादि को स्वच्छ करने में जो सफलता करोड़ों रुपये खर्च करने के बावजूद नहीं प्राप्त हो पायी; वह कोरोना ने सफल कर दिया। अधिकांश नदियों का जल निर्मल व स्वच्छ हो गया। इस अवधि में पक्षी की अनेक प्रजातियाँ घर के छत, मुंडेर और वृक्षों पर चहचहाते एवं कलरव करते देखे गये। यही स्थिति वन्य जीवों की भी रही। मौनसून इस बार इतना बढिया रहा कि कोई भी नक्षत्र बरसने से चुका नहीं, और पूरी वर्षा ऋतु में वर्षा की झड़ी लगी रही। वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन छिद्र भी भर गया। अतः मेरा यह मानना है कि प्रतिवर्ष पूरे विश्व में एक या दो माह का लौकडाउन अनिवार्यतः यदि लगा दिया जाय तो संभव है, प्रदूषण में बहुत बड़ी कमी आ जायेगी।

भारत सरकार द्वारा वन संपदा को पुनः प्रतिष्ठित करने तथा वन संपदा एवं पर्यावरण की रक्षा और कल्याण के लिए अनेक योजनाओं को क्रियान्वित किया गया है। सन् 1952 में राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की गई, जिसके अनुसार देश के कुल भौगौलिक क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भाग पर वनों का विस्तार करना था। इसमें पर्वतीय भाग के 60 प्रतिशत तथा मैदानी भाग के 20 प्रतिशत क्षेत्र को वनों के अन्तर्गत लाना था, परन्तु यह नीति प्रभावित सावित नहीं हुई और असफल रही। तत्पश्चात् वनोत्थान एवं संरक्षण के लिए कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन प्रतिवर्ष होता रहा। कई अधिनियम लाये गए, यथा–जंगली जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972, सामाजिक वानिकी अधिनियम 1979, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु प्रदूषण अधिनियम 1981, राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड 1985, पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986 आदि। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में वनों के विकास के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था के बावजूद देश के 33 प्रतिशत भू–भाग को वनों के अन्तर्गत नहीं लाया जा सका। अतः सन् 1988 में एक नई वन नीति सरकार द्वारा लाई गई। इस नीति का लक्ष्य भी 1952 वाली नीति–सही रहा तथा इसमें वनों की रक्षा तथा उसके विकास में जनसाधारण को भागीदार बनाने का संकल्प लिया गया। स्व० प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने अपने पंचवर्षीय कार्यक्रमों में वृक्षारोपण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था और उसी के फलस्वरुप सड़कों एवं रेलवे लाईनों के दोनों तरफ वृक्षारोपण का अभियान चलाया गया। भोले–भाले आदिवासियों द्वारा चलाया गया चिपको आंदोलन भी एक महत्त्वपूर्ण कदम रहा। बिहार में मुख्यमंत्री द्वारा निर्देशित सात निश्चय योजना में जल, जीवन, हरियाली भी एक सार्थक कदम के रूप में उभर रहा है। तथापि अनियंत्रित गति से बढ़ती जनसंख्या तथा उसकी बढ़ती मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वन अहर्निष घटते ही जा रहे हैं।

पर्यावरण की इस बहुआयामी विध्वंसक क्षति को निःसंदेह समुचित वन–व्यवस्था द्वारा ही नियंत्रित किया जा सकता है। समुचित वन–व्यवस्था अथवा वन संरक्षण के संदर्भ में कुछ भौतिक तथ्यों पर विशेष ध्यान देना प्रासंगिक होगा। जैसे–

1. वन अधिनियम 1980 का कड़ाई से पालन किया जाए।
2. जिन क्षेत्रों में निकट अतीत में वृक्ष काट डाले गये हैं वहाँ निश्चित रुप से वृक्षारोपण किया जाए।
3. जलावन की लकड़ी के स्थान पर वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों को विकसित किया जाए।
4. लकड़ी काटनी ही पड़े तो ऐसी स्थिति में चुन–चुन कर सिर्फ परिपक्व वृक्ष ही काटे जाएँ, इससे विकासशील वृक्षों को बढ़ने का सुअवसर मिलेगा और वृक्ष काटने से पूर्व उसके बगल में एक नया वृक्ष अवश्य लगा दिया जाय
5. भवन निर्माण एवं फर्नीचर के लिए लकड़ी के स्थान पर लोहे या अन्य चीजों को वरीयता दी जाए।
6. कृषि भूमि के विस्तार हेतु वनों के विनाश पर कठोर प्रतिबंध लगाया जाए।
7. वनों पर आधारित उद्योग धंधों के कच्चे माल के लिए सामाजिक वानिकी योजनाएँ प्रारंभ की जाएँ।
8. चारागाह क्षेत्रों का विकास रोका जाए।
9. जिन योजनाओं से वनों के अत्यधिक क्षेत्रफल का विनाश हो रहा हो, उसके निर्माण पर कम महत्त्व दिया जाए।
10. होली, लोहड़ी एवं अन्य त्योहारों पर लकड़ी को व्यर्थ न जलाया जाए तथा लकड़ी के शवदाह गृहों की अपेक्षा विद्युत शवदाह गृहों का विकास किया जाए।
11. जो वृक्ष प्रजातियाँ पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें सुरक्षित वृक्ष प्रजाति घोषित किया जाए।
12. वन्य जीव जन्तुओं के संरक्षण एवं विकास के लिए अधिक से अधिक अभयारण्य स्थापित किए जाएँ।
13. वृक्षारोपण के साथ ही वन संरक्षण पर जोर दिया जाए। वन संरक्षण के लिए वन अग्निशमन हेतु नई वैज्ञानिक तकनीक (वायुयानों से अग्नि निरोधक रसायनों का छिड़काव, अग्नि अवरोधकों का निर्माण, दावानल की त्वरित सूचना आदि) का उपयोग, वृक्षों की वैज्ञानिक विधि से कटाई, वनों की हानिकारक कीटाणुओं एवं रोगों से रक्षा तथा वनों में पशुचारण नियंत्रण पर विशेष ध्यान दिया जाए।
14. प्रतिवर्ष अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर उसे सुरक्षित रखने वाले को विभिन्न माध्यमों से पुरस्कृत कर प्रोत्साहित किया जाए।
15. एन. एस. एस. की व्यवस्था विद्यालय स्तर पर भी हो, ताकि इसके माध्यम से विद्यालयीन छात्र भी समाज में वृक्ष की महत्ता को रख सकें एवं इसमें शिविर लगाने की अनिवार्यता की तरह वृक्षारोपण के लिए भी अनिवार्य शिविर लगाया जाए।
16. वृक्षारोपण एवं वनों से संबंधित शोध एवं खोज को प्रोत्साहित किया जाये।
17. उत्सवों, जन्मदिनों पर मोमबत्ती जलाने की प्रथाओं के स्थान पर वृक्ष लगाने की परम्परा कायम की जाय।
18. शादी–विवाह या अन्य उत्सवों के अवसर पर भेट स्वरूप वृक्ष देने की परम्परा को अमल में लाया जाए।
19. ''उर्जा का वैकल्पिक स्रोत खोजें। सौर उर्जा तथा बायो गैस को लोकप्रिय बनाया जाए''।[5]
20. ''उद्योग परिसर में ऐसे वृक्षों को लगाया जाये जो विषैली गैसों का अवशोषण कर सके। वृक्षों की सघन पट्टियाँ ध्वनि अवशोषक भी होती हैं। इसकी मोटाई 8–10 मीटर तक हो सकती है''।[6]

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्त्तन सम्मेलन में अलग–अलग जिम्मेदारियों और क्षमता (सी० बी० डी० आर– आर० सी०) के

बावजूद समानतापूर्ण और साझा सिद्धांतों को अपनाने के प्रति भारत का दृष्टिकोण इस बात का प्रमाण है कि हम प्रकृति और मानवता के बीच सौहार्द्रपूर्ण और टिकाऊ संतुलन प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं। हाल ही में विशाखापत्तनम में गैस लीकेज की घटना और केरल के मल्लापुरम में गर्भवती हथिनी की निर्मम अमानवीय हत्या हमारे लिये चिंता का विषय है। पर्यावरण संरक्षण और सभी जीवधारियों एवं प्रकृति के साथ साहचर्य विकसित करने के लिये मानव जाति को ज्यादा सहृदय, करूणा और प्रेम का परिचय देना होगा एवं प्रकृति संरक्षण के सामूहिक प्रयासों को और गति देनी होगी।

निष्कर्षः

पर्यावरणीय प्रदूषण और जलवायु के परिवर्त्तन के खतरे बेहद चिंताजनक स्तर पर पहुँच गये हैं और मनुष्य इस बात के लिये विवश हुआ है कि वह तथ्य को और अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना सीखे ताकि हम भविष्योन्मुखी और समग्र दृष्टिकोण को अपना सके और भावी पीढ़ी के लिये बेहतर पर्यावरण छोड़ सके। पर्यावरण की रक्षा के लिए वन क्षेत्रों का समुचित विस्तार एवं संरक्षण दोनों न सिर्फ आवश्यक है बल्कि अपरिहार्य भी है। उपर्युक्त सुधारों के आधार पर कार्य करने तथा वन संपदा की उपयोगिता एवं बहुमूल्य सेवाओं की जानकारी जन–जन तक पहुँचाकर वनों को विनाश से बचाया जा सकता है। वस्तुतः तभी पर्यावरण की शुद्धता भी बनी रहेगी। पर्यावरण हमारी बपौती संपत्ति नहीं बल्कि यह हमें विरासत में मिली है; अगर हम इसे बेहतर न बना सकें तो कम से कम इतना चौपट भी न कर दें कि भावी पीढ़ियों का जीवन खतरे में पड़ जाए, फिर तो आज की बीमार हवा, बीमार पानी, बीमार मिट्टी भावी संतानों को बीमार ही पैदा करेगी।

स्रोत–संदर्भः

1. अथर्वेद : काण्ड 12, सूक्त 1, मंत्र 12 (वैदिक कथांक, प्रकाशक– गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण संवत् 2061, पृ०– 439–40 से उद्धृत)
2. योजना, मासिक, निबंध लेखक– सतीश कुमार शर्मा, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, नबम्बर 1999, पृ०–33
3. रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, उत्तरकांड 7/29, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण संवत् 2051, पृ०– 489
4. पर्यावरण शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, प्रथम संस्करण–2016, पृ०–337
5. पर्यावरण शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, प्रथम संस्करण–2016, पृ०–402
6. हरित वसुन्धरा–त्रैमासिकी, निबंध लेखक– ओम प्रकाश 'बजाज', अप्रैल–जून 2003, पृ०–4